स्वधर्म
(SVADHARMA)

स्वधर्म एक सामासिक शब्द है जिसमें दो शब्द 'स्व' और 'धर्म' युक्त है। स्व का अर्थ अपना है, और धर्म का अर्थ कर्त्तव्य है। प्रत्येक व्यक्ति का जो अपना कर्त्तव्य होता है, उसे ही स्वधर्म कहा जाता है। ***गीता*** के अनुसार *हर व्यक्ति का अपना-अपना कर्त्तव्य निर्धारित है। यह कर्त्तव्य उसके गुण और स्वभाव के अनुसार ईश्वर द्वारा निर्धारित किया गया है।* उन कर्त्तव्यों को दो श्रेणियों में रखा जा सकता है – सामान्य कर्त्तव्य और विशेष कर्त्तव्य। सामान्य कर्त्तव्य वह है जिसे हर व्यक्ति, चाहे वह किसी वर्ण का हो, अपनाता है। विशेष कर्त्तव्य वह है जिसे विशेष वर्ण और विशेष आश्रम के सदस्य अपनाते हैं।

किसी वर्ण या आश्रम का सदस्य क्यों न हो, सभी मनुष्य के लिए सत्य, अहिंसा, अस्तेय, अपरिग्रह और ब्रह्मचर्य को अपनाना आवश्यक है। सभी व्यक्तियों के लिए सदा सत्य बोलना, कभी हिंसा नहीं करना, चोरी और लोभ नहीं करना, अपनी आवश्यकतानुसार धन संचित करना लेकिन उससे अधिक नहीं, और इन्द्रियों को अपने वश में करना ये सभी हर व्यक्ति को अपनाना आवश्यक है। ऐसा होने पर ही समाज और मनुष्य दोनों का जीवन सुव्यस्थित और शान्तिपूर्ण होता है। जैन, बौद्ध और योग दर्शनों में स्पष्ट रूप से इन पांच महाव्रतों को अपनाने की बात की गयी है। बौद्ध दर्शन जैन और योग दर्शनों की तरह स्पष्ट तो नहीं है, लेकिन शील (सम्यक् वाक्, सम्यक् कर्मांत, सम्यक् आजीब) के अंतर्गत सत्यादि पंचमहाव्रतों का उल्लेख है। जो मनुष्य इन पांच कर्त्तव्यों को निरन्तर अपनाता है, वही क्षमाशील, कृपालु, दयावान, करूणापूर्ण, परोपकारी आदि गुणों से पूरित होता है। तात्पर्य है कि सामान्य कर्त्तव्य के रूप में क्षमा, धैर्य, तप, करूणा, परोपकार, सहयोग, सहानुभूति, त्याग आदि नैतिक गुणों को अपनाना सभी व्यक्ति के लिए आवश्यक है। ऐसा होने पर युद्ध, संघर्ष, आतंक आदि की स्थिति कदापि नहीं आयेगी। प्रत्येक व्यक्ति में ये नैतिक गुण वर्त्तमान रहते हैं, लेकिन हर व्यक्ति अज्ञानवश इन गुणों के विपरीत गुण को अपनाता है। ***गीता*** में बतलाया गया है कि हर मनुष्य के अन्दर दो तरह की प्रवृत्तियाँ पायी जाती हैं – आसुरी और दैवी। आसुरी प्रवृत्तियों के अंतर्गत लोभ, मोह, परिग्रह आदि गुण आते हैं। ये प्रवृत्तियाँ मनुष्य का स्वधर्म नहीं है। *स्वधर्म वह होता है जिससे समाज और मनुष्य का जीवन सुव्यवस्थित और नियंत्रित हो पाता है। शान्ति और सौहार्द्र का वातावरण बना रहता है। अतः स्वधर्म के अंतर्गत दैवी प्रवृत्तियाँ (सत्य, दया, तप आदि) ही आती हैं। श्रीकृष्ण दैवी प्रवृत्तियों को ही अपनाने और उजागर करने का उपदेश देते हैं।*

परन्तु *स्वधर्म का वास्तविक सम्बन्ध विशेष धर्म (वर्णाश्रम धर्म) से माना जाता है।* समाज की व्यवस्था के लिए मनुष्यों को उसके गुण, कर्म और स्वभाव के अनुसार चार वर्णों और चार आश्रमों में विभाजित किया जाता है। वे चार वर्ण हैं – ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र। चार आश्रम हैं – ब्रह्मचर्य, गार्हस्थ्य, वानप्रस्थ और संन्यास। ब्रह्मचर्य आश्रम मानव-जीवन की वह प्रारंभिक अवस्था है जहाँ मनुष्य गुरू के समीप रहकर ज्ञान प्राप्त करता है। सर्वश्रेष्ठ ज्ञान आत्मज्ञान है, आत्मज्ञान के पूर्व तत्त्वज्ञान की प्राप्ति आवश्यक

है। अतएव ब्रह्मचर्याश्रम में तत्त्वज्ञान और आत्मज्ञान प्राप्त करना मनुष्य का कर्तव्य है। यह दोनों ज्ञान ही सत्य और यथार्थ है। इन ज्ञानों को जानने के लिए वेद, उपनिषद, स्मृति, पुराण, इतिहास, व्याकरण, न्यायशास्त्र आदि ग्रंथों में निहित कथनों को जानना आवश्यक है। अतः ज्ञान की प्राप्ति मनुष्य का प्रथम कर्तव्य है। इस ज्ञान की प्राप्ति के बाद ही मनुष्य गार्हस्थ्य जीवन में प्रवेशकर उसे सफलतापूर्वक निभाता है। गार्हस्थ्य जीवन के कतिपय निर्धारित कर्तव्य है, जिनका पालन करना आवश्यक है। इन कर्त्तव्यों को 'यज्ञ' की संज्ञा दी जाती है। गीता में कहा गया है कि यज्ञ के अतिरिक्त अन्य सभी प्रकार के कर्म बन्धन में डालते है, अर्थात् यज्ञकर्म ही मुक्ति का श्रेष्ठ मार्ग है।[1] गार्हस्थ आश्रम ही वह स्थल है जहाँ पाँच प्रकार के यज्ञ कर्म किये जाते है। प्रत्येक मनुष्य को चाहिए कि वह ब्रह्मयज्ञ, देवयज्ञ, पितृयज्ञ, भूतयज्ञ और नृयज्ञ को अपनाये। ब्रह्मयज्ञ का अर्थ है स्वाध्याय करना अर्थात् स्वयं शिक्षा ग्रहण करना। शिक्षा ग्रहण करने के लिए गुरू के पास जाना पड़ता है। किन्तु बिना गुरू के भी स्वयं प्रयास से शिक्षा ग्रहण की जा सकती है। जैसे – एकलव्य ने स्वयं प्रयास से शिक्षा ग्रहण की, और सर्वश्रेष्ठ धनुर्धारी बना। देवयज्ञ देवताओं के प्रति कर्तव्य है। देवताओं का आह्वान करके 'स्वाहा' शब्दोच्चारण द्वारा अग्नि में समिधा देना देवयज्ञ है। पितरों को पिण्डदान देना पितृयज्ञ है। तर्पण, बलिहरण और दैनिक श्राद्ध द्वारा यह यज्ञ सम्पन्न होता है। तर्पण की क्रिया में दी जाने वाली बलि का शेष अंश दक्षिण दिशा में पितरों के लिए 'स्वधा' शब्दोच्चारण द्वारा छोड़ना बलिहरण है। भूतयज्ञ संसार के छोटे-बड़े जीवों को दिया जानेवाला भोजन है। नृयज्ञ अतिथियों की सेवा करना है, उसका स्वागत करना है। कहा जाता है कि अतिथि भगवान होते है। अतएव मनुष्य के प्रति आदर-सम्मान करना मनुष्य का परम कर्तव्य है। इन पाँच यज्ञों से स्पष्ट है कि गार्हस्थ्य आश्रम में ही मनुष्य अपने कर्तव्यों का पालन सही ढंग से कर पाता है, और उसके कर्त्तव्य विस्तृत होते है। बौद्ध दर्शन और जैन दर्शन में भी गार्हस्थ्य जीवन के महत्व को स्वीकारते हुए इस जीवन के कर्तव्यों का निर्धारण किया गया है। इस जीवन को 'श्रावक-जीवन' की संज्ञा दी गयी है।

वानप्रस्थ आश्रम एकान्तवास में स्वाध्याय का जीवन है। यह गार्हस्थ्य और संन्यास आश्रम के बीच का सेतु है। मनुष्य गार्हस्थ्य जीवन के कर्त्तव्यों का पालन करने के पश्चात अपने लिए समय निकालता है, और जंगलों में या किसी सुनसान जगह में एकान्त होकर प्रभु के प्रति ध्यानस्थ होता है। ध्यानावस्था में उसे ज्ञान की प्राप्ति होती है। यह आध्यात्मिक ज्ञान है। मनुष्य अभी भी गार्हस्थ्य जीवन के मोह से पूरी तरह निवृत्त नहीं होता। परन्तु संन्यास आश्रम में वह पूर्ण निवृत्त होता है। संन्यास आश्रम में आने के बाद मनुष्य केवल धर्मज्ञान और अध्यात्मज्ञान का उपदेश देता है। इस तरह प्रत्येक आश्रम के अपने-अपने निर्धारित कर्तव्य है। चारों आश्रमों की तरह चारो वर्णों के कर्त्तव्य निर्धारित है।

ब्राह्मणों का मूल कर्तव्य ज्ञान (शास्त्र और शस्त्र) प्राप्त करना और ज्ञान देना है। साथ ही, दान लेना और दान देना, तपस्या करना, यज्ञ करना और करवाना ब्राह्मणों के कर्तव्य है। ब्राह्मणों को सत्यवादी, क्षमाशील, मृदुभाषी, दयालु, विनम्र होना चाहिए। सच्चा ब्राह्मण वही होता है जो ब्रह्म को जानता है। ब्राह्मण शब्द ब्रह्म शब्द से बना है, और ब्रह्म 'वृह' धातु से बना है। वृह का अर्थ बढ़ना, फैलना इत्यादि है। अतएव ब्रह्म वह है जो

1. *गीता*, 3.9

फैलता और विस्तारित होता है। दूसरे शब्दों में, सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड जिस पर अधारित है, वही ब्रह्म है और उस आधार का ज्ञान जिसके पास है, वही ब्राह्मण है। अतएव ब्राह्मणों का कर्त्तव्य है ब्रह्म को जानना यानी सम्पूर्ण विश्व और उस विश्व के व्यापक आधार को जानना। इसलिए ब्राह्मण को विद्वान कहा जाता है। क्षत्रिय वह है जो देश और समाज की सुरक्षा करता है। 'क्षत्र' शब्द से क्षात्र बना है, क्षात्र से क्षत्रिय। क्षत्र का अर्थ होता है वह जो ढक ले। इसलिए क्षात्र का अर्थ छाता है, और छाता सुरक्षा प्रदान करता है। अतः क्षत्रिय का अर्थ है सुरक्षा प्रदान करनेवाला। सुरक्षा तभी प्रदान किया जा सकता है जब उसका ज्ञान हो। अतः क्षत्रियों का कर्त्तव्य है — शस्त्र और शास्त्र का ज्ञान प्राप्त करना। इसके अतिरिक्त, दान देना, देश और समाज की सुरक्षा करना, यज्ञ करना भी क्षत्रियों के कर्त्तव्य है। वैश्य समाज की रीढ़ है। देश और समाज की आर्थिक संरचना वैश्य वर्ण पर ही निर्भर है। वैश्य वर्ण का कर्त्तव्य है शिक्षा ग्रहण करना (शास्त्र की नहीं), दान देना, यज्ञ करना आदि। लेकिन वैश्य का प्रमुख कर्त्तव्य खेती और व्यापार करना है। खेती और व्यापार द्वारा ही समाज और देश की आर्थिक संरचना सुदृढ़ होती है। ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य वर्णों की सेवा करना शूद्र वर्ण का कर्त्तव्य है।

यदि सभी वर्ण और आश्रम के लोग अपने-अपने कर्त्तव्यों का पालन करते हैं, तो समाज में कभी भी अशान्ति नहीं फैलेगी, न ही युद्ध, संघर्ष और आतंक की स्थिति पैदा होगी। वास्तव में, स्वधर्म द्वारा मनुष्य को वैयक्तिक और सामाजिक दोनों प्रकार की मुक्ति मिलती है। इसलिए मानव-जीवन में स्वधर्म का अत्यधिक महत्व है। कहा गया है — स्वे स्वे कर्मण्यभिरतः संसिद्धि लभते नरः अर्थात् अपने-अपने कर्म के आचरण (सम्पादन) से मनुष्य को सिद्धि (मुक्ति) मिलती है।[1]

❑